राजस्थान में राज्य राजनीतिः एक विश्लेषण

* डॉ. मोहम्मद कामरान खान

शोध सारांश

राज्य भारतीय संघात्मक व्यवस्था की महत्त्वपूर्ण सवैंधानिक इकाईयां है! संघात्मक प्रणाली वाले देशों में राज्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती हैं। संघात्मक व्यवस्था में राज्य राष्ट्रीय व्यवस्था से प्रभावित होते हैं और उसे प्रभावित भी करते है। इसलिए भारतीय राजनीतिक व्यवस्था तथा उसकी राजनीतिक प्रणाली को समझने के लिए राज्यों की राजनीतिक प्रक्रिया को समझना आवश्यक हैं। भारतीय संघ के विभिन्न राज्यों में होने वाली राजनीतिक प्रक्रिया के अध्ययन को राज्यों की राजनीति के नाम से जाना जाता हैं। एक सवैधानिक ढाँचे और समस्त भारत की राजनीति का भाग होते हुए भी विभिन्न राज्यों में राजनीतिक प्रक्रिया समान नहीं है क्योंकी राजनीतिक प्रक्रिया केवल कानूनी और सवैधांनिक ढांचे तक ही सीमित नही होती है। इतिहास, संस्कृति, मूल्य व्यवस्था, परम्परा, राजनीतिक संस्था निर्माण में विभिन्नता होने के कारण हर राज्य की राजनीतिक प्रक्रिया दूसरे से भिन्न हैं। भारत में राज्य राजनीति के अध्ययन को 1960 के उत्तरार्द्ध में अधिक महत्त्व मिलने लगा हैं!

मायनर वीनर के अनुसार ''भारत के सभी घटक राज्यों में निसंदेह संघीय शासन की भांति संसदात्मक लोकतांत्रिक संस्थाए कार्यरत है, सभी राज्यों में स्थायी लोक सेवाएं निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति जवाबदेय हैं, तथापि व्यवहार में इन संस्थाओं की कार्य प्रणाली और आचरण में अन्तर परिलक्षित होता है जिसका मूल कारण राज्य विशेष की विशिष्ट परिस्थितियां और राजनीतिक परिवेश हैं।[1]

इकबाल नारायण ने अपनी पुस्तक 'स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया' मे राज्य राजनीति के निम्नलिखित निर्धारक तत्व बताये हैं।[2]

1. संस्थागत तत्व
2. अवस्थात्मक निर्धारक तत्व
3. अन्तःक्रियात्मक निर्धारक तत्व
4. सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक निर्धारक तत्व
5. विशिष्ट वर्गीय ढांचा

मायनर वीनर ने अपनी रचना स्टेट पालिटिक्स इन इण्डिया में राज्यों की राजनीति के निर्धारक तत्वों में दो की प्रमुख रूप से चर्चा की है। (1) सामाजिक आर्थिक परिवेश जिसमें राजनीति रूप ग्रहण करती हैं। (2) सरकार का कामकाज व उपलब्धिया।[3]

प्रो. रजनी कोठारी के अनुसार राज्यों की प्रवृत्तियों को चार मुख्य बातों ने प्रभावित किया है। स्वतन्त्रता से पहले का राजनीतिक स्वरूप, कांग्रेस के विरोधी या प्रतिपक्षी तत्वों का स्वरूप और शक्ति, राज्यों का कांग्रेस की राजनीति पर प्रभाव डालने वाले आन्तरिक विरोध व विभिन्नता और विभिन्न प्रदेशों के सामाजिक ढाँचे में अन्तर[4]

उपरोक्त सैद्धान्तिक ढांचे विभिन्न राज्यों की राज्य राजनीति को समझने और उसके सैद्धान्तिक प्रतिरूप को विकसित करने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। स्पष्ट हैं भारतीय संघ के सभी राज्यों में एक ही संविधान और समान कानूनी व्यवस्था तथा राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना के बावजूद प्रत्येक राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा वहां के सामाजिक तथा आर्थिक ढांचे के सन्दर्भ में अलग–अलग प्रकार की प्रवृत्तियां और दिशांए पाई जाती हैं। तथा विकास की प्रकिया भी सभी राज्यों में समान नहीं हैं।

भारतीय संघात्मक व्यवस्था में हर राज्य की राजनीति का अपना एक विशिष्ट स्वरूप है इस रूप में राजस्थान की राजनीति अपना विशिष्ट महत्त्व रखती हैं। राजस्थान आकार की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य हैं। वर्तमान राजस्थान की स्थापना होने से पूर्व राजस्थान में 20 रियासते, दो ठिकाने तथा अजमेर मेरवाड़ा के केन्द्र शासित प्रदेश सम्मिलित थे।

रियासतें निम्न थी

जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर, उदयपुर, अलवर, भरतपुर, करौली, धौलपुर, किशनगढ़, कोटा, झालावाड़, टोंक, डुंगरपुर, प्रतापगढ़, बांसवाड़ा, बूंदी, शाहपुरा, सिरोही, दाता ठिकाने थे कुशलगढ़, लावा

देशी रियासतों में ना तो किसी संवैधानिक शासन के चिन्ह थे और ना उत्तरदायी शासन के इन सभी रियासतों में शासन पूर्णतः निरकुंश थे। शासको का रियासत में कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के कार्यो पर पूर्णतः नियन्त्रण था। रियासतों के शासन का प्रभाव राजस्थान की आर्थिक और सामाजिक संरचना पर पड़ा, रियासती काल में एक रियासत की जनता का दूसरी रियासत में आव्रजन बहुत कम हुआ। साथ ही संचार साधनों, परिवहन व्यवस्था तथा अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार भी अवरूद्ध रहा।

स्वाधीनता के पश्चात देशी रियासतों के उन्मूलन के बाद भी भूतपूर्व शासकों के प्रति जनता में श्रृद्धा और आदर की भावना किसी न किसी रूप में विद्यमान रही। जनता की इसी श्रृद्धा और आदर तत्व ने राज्य राजनीति में सामन्तवादी तत्वों का प्रबल प्रभाव बनाए रखा, 1938 में हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन में देशी रियासतो की जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए संगठित करने का प्रस्ताव पारित हुआ। फलस्वरूप विभिन्न रियासतों में प्रजा मण्डल, प्रजा परिषद, किसान सभा की स्थापना हुई।

प्रजा मण्डल आन्दोलन का उद्देश्य रियासतो के कुशासन की समाप्त करने उसमें व्याप्त कुरीतियों को दूर करने तथा नागरिकों को मौलिक अधिकार दिलाने का था। इसी प्रकार देशी रियासतों में राजनीतिक जाग्रति और रचनात्मक गतिविधियों को प्रादुभाव करने का श्रेय प्रजा मण्डलों को हैं। यद्यपि इससे पूर्व भी राजस्थान में रियासती दमन के खिलाफ बिजोलिया का किसान, आन्दोलन, बेगू, आन्दोलन, नीमूचना आन्दोलन, मेव आन्दोलन हो चुके थे।

राजस्थान अपनी स्थापना से पूर्व किसी समान प्रशासनिक व्यवस्था के अर्न्तगत रही था इसलिए स्वाधीनता के पश्चात् राज्य राजनीति का जो स्वरूप उभरा वह स्वयं ही देशी रियासतों की सीमाओं का अनुकरण करने लगा तथा देशी रियासतों के आधार पर विभाजित होने लगा।[5] देशी रियासतों के शासन ने स्वाधीनता पूर्व राजस्थान की राजनीतिक संस्कृति की सकीर्ण पराधीन राजनीतिक संस्कृति का रूप प्रदान किया।

20वी शताब्दी के प्रारम्भ में हुए प्रजामण्डल तथा किसान आन्दोलनों ने देशी रियासतो में एक नए राजनीतिक

समुदाय और नयी राजनीति को जन्म दिया। यह नवीन राजनीतिक समुदाय अपने पूर्ववतियों की तुलना में ज्यादा प्रतिनिधियात्मक, बहुलवादी तथा राजनीतिक आदर्शो के प्रति प्रतिबद्ध था। इस नये राजनीतिक समुदाय और राजनीति को संगठित करने में कांग्रेस की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। स्वाधीनता के पश्चात की राजनीति में इसी नये राजनीतिक समुदाय ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। पूर्णतः राजशाही से संसदीय प्रजातन्त्र में त्वरित परिवर्तन राजस्थान के इतिहास की अनोखी राजनीतिक परिघटना थी। राजस्थान जो अपनी कमजोर अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक पिछड़ेपन का प्रतिनिधित्व कर रहा था अचानक नवीन प्रयोगो की कार्यशाला बनने लगा। 1959 में पंचायती राज व्यवस्था को सर्वप्रथम राजस्थान में ही प्रारम्भ किया गया। 1967 में राष्ट्रव्यापी परिवर्तन से राजस्थान अछूता नहीं रहा, जिसके परिणामस्वरूप 1967 में कांग्रेस का बहुमत प्राप्त नही हो पाया।

भारत के अन्य भागों की तरह राजस्थान में भी जाति प्रमुख सामाजिक वर्गीकरण हैं और स्वतन्त्रता के पश्चात राजस्थान की राजनीति का एक प्रमुख तत्व रहा हैं। जाति अपने शुद्ध रूप में अर्न्तनिहीत नियमों पर आधारित अर्न्तजात सामाजिक इकाई है जो कई प्रकार के सामाजिक अर्न्तसम्बन्धों को निर्धारित करती है जो अन्य सामाजिक इकाईयो की तुलना में स्वीकार किए जाते हैं।[6]

राजस्थान में जातियों की संख्या बहुत अधिक हैं और व्यापक रूप से फैली हैं। लेकिन कोई भी जाति पर जातिगत समूह संख्या की दृष्टि से बहुसंख्या में नहीं हैं 1931 की जनगणना (जिसमें जातिगत आधार पर जनगणना की गई थी) में राजपूताना में 393 प्रकार की जातियों और जनजातियों की गणना की गई थी। यद्यपि इसमें 42 जातियों और जनजातियों द्वारा जनसंख्या का 84 प्रतिशत मिलकर बनता हैं। राज्य में कुछ जातियां तो बहुत छोटी हैं और सिर्फ कुछ क्षेत्रों में ही फैली हैं।[7]

राजपूताना रियासतों में जातियों का आकार

आकार	जातियों की संख्या
3,00,000 से अधिक	9
1,00,000 – 2,99,999	13
50,000 – 99,999	20
10,000 – 49,999	54
10,000 से कम	297
कुल	**393**

स्रोतः भारत की जनगणना 1931 खण्ड 27, द राजपूताना एजेन्सी, मेरठ भारत सरकार 1932

प्रमुख जातियों का क्षेत्र के आधार पर जनसंख्या प्रतिशत

जातियां	राजस्थान	मत्स्य	जयपुर	कोटा	उदयपुर	जोधपुर	बीकानेर
जाट	9	7	11	1	3	12	23
चमार	7	14	9	11	3	0	7
भील	6	0	0	3	47	3	0
राजपूत	6	4	4	2	5	9	6
मीणा	5	5	9	10	4	1	0
गुर्जर	5	7	7	8	4	1	0
माली	3	3	5	7	1	3	2
कुम्हार	3	5	3	3	4	4	4
ब्राह्मण	8	9	10	6	6	5	9
महाजन	7	4	8	1	3	6	1

स्रोत : भारत की जनगणना 1931, द राजपूताना ऐजन्सी

राजस्थान में भूमि का विस्तार प्रमुख रूप से दो श्रेणियों में वर्गीकृत था 1. जागीर 2. खालसा खालसा भूमि सीधे शासक के अर्न्तगत आती थी जबकि जागीर भूमि जागीरदार के अर्न्तगत आती थी। राजस्थान में 66 प्रतिशत भूमि और 52 प्रतिशत गांवों में जागीर व्यवस्था प्रचलित थी जबकि 34 प्रतिशत भूमि और 48 प्रतिशत गांवों में खालसा व्यवस्था प्रचलित थी।

स्वाधीनता से पूर्व राजस्थान में भूमिधारण और भूराजस्व प्रणालियां मध्यस्थों पर आधारित, काश्तकारों के अधिकार रहित और निश्चित कर राजस्व व्यवस्था रहित थी। इसके अतिरिक्त जागीरदार अतिरिक्त धन भी वसूलते हैं। प्रत्येक देशी रियासत में जागीरदारों को अपने क्षेत्र में प्रभुत्ववाली स्थिति प्राप्त थी तथा जागीरदार किसानों पर अतिरिक्त कर लगाते थे जिन्हे लागबाग कहा जाता था जो अपने प्रकृति से शोषणकारी थे।

जागीरदार व्यवस्था के अर्न्तगत स्वाधीनता के पूर्व कई कृषक विद्रोह हुए जिसमें सबसे प्रमुख बिजोलिया आन्दोलन या 1897 से शुरू होकर 1942 तक चलता रहा। इस आन्दोलन ने राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त किया बिजोलिया आन्दोलन की तरह मारवाड़, सीकर, अलवर, बेगू में भी किसान आन्दोलन हुए। कई राष्ट्रवादी नेताओं ने इन कृषक आन्दोलनों का नेतृत्व किया जिसमें विजय सिंह पथिक, माणिक्य लाल वर्मा, साधु सीता राम, प्रेम चन्द भील, रामनारायण भील,

हरिभाऊ उपाध्याय, जयनारायण व्यास, मथुरादास माथुर, बलदेव राम मिर्धा, रामनारायण चौधरी व कुम्भाराम आर्य प्रमुख थे कृषक आन्दोलनों से जुड़े कई नेता स्वाधीनता के पश्चात सरकार में शामिल हुए और जागीरदार उन्मूलन के कार्य में महत्त्व योगदान किया। दूसरी तरफ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भी जमींदारी, जागीरदारी और समस्त प्रकार की मध्यस्थ भूधारण प्रणालियों के उन्मूलन के प्रति प्रतिबद्ध थी। स्वाधीनता के पश्चात जागीरदारी तथा जमींदारी व अन्य मध्यस्थ भूधारण प्रणालियों का उन्मूलन के लिए विधानसभा ने कई अधिनियम पारित किए।

राजस्थान में दलीय प्रणाली का अध्ययन यह परीक्षण करने का अवसर प्रदान करता हैं कि परम्परागत समाज जो तीव्र संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं उनमें राजनीतिक दलों की भूमिका और विकास किस प्रकार हुआ। दलीय प्रणाली का विश्लेषण उन राज्यों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए भी सामग्री प्रदान करता हैं जो या तो सीधे ब्रिटिश शासन के अर्न्तगत रहे हैं या देशी रियासतों के शासन के अन्तर्गत रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह अल्पविकसित दलीय व्यवस्था में व्यापक निर्वाचन व्यवस्था तथा निर्वाचन व्यवहार के अध्ययन के लिए सामग्री प्रदान करता हैं।[8]

राजस्थान स्वाधीनता से पूर्व अनेक देशी रियासतों में बटा हुआ था जिसमें कार्यरत विभिन्न राजनीतिक समूह न तो संगठित थे ना ही समन्वित जो एक पूर्ण, विकसित, एकीकृत राजनीतिक दल को जन्म दे सके। स्वतन्त्रता के पश्चात लोकतन्त्र और चुनावी राजनीति के कारण कांग्रेस तथा अन्य राजनीतिक दलों को अपने औपचारिक संगठन तथा जनाधार की आवश्यकता महसूस हुई फलस्वरूप राजस्थान में दलीय प्रणाली के राजनीतिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।[9]

1942 में ऑल इण्डिया स्टेट पीपुल्स काफ्रेंस की राजपूताना क्षेत्रीय परिषद का गठन किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य प्रजामण्डलो की गतिविधियों को समन्वित करना था। स्वतन्त्रता के पश्चात ऑल इण्डिया स्टेट पीपुल्स काफ्रेंस की राजपूताना क्षेत्रीय परिषद् का रूपान्तरण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अधिकृत राजस्थान शाखा के रूप में कर दिया गया। 1948 में राजस्थान में प्रदेश कांग्रेस समिति का औपचारिक रूप से उद्घाटन हुआ और राजपूताना क्षेत्रीय परिषद् के अध्यक्ष गोकूल भाई भट्ट प्रथम कांग्रेस अध्यक्ष बने।[7] राजस्थान प्रदेश कांग्रेस समिति को अपनी स्थापना के बाद से ही कई चुनौतियो का सामना करना पड़ा। कांग्रेस समिति का स्वाधीनता से पूर्व ना तो कोई औपचारिक राजनीतिक संगठन था ना ही कोई जनाधार

2. प्रादेशिक स्तर के नेतृत्व का अभाव। सभी वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं का प्रभाव एक क्षेत्र तक ही सीमित था।
3. प्रजामण्डल की गतिविधियाँ सिर्फ शहरी क्षेत्र तक ही सीमित थी, ग्राम स्तर पर जनाधार नहीं था। इसके बावजूद स्वाधीनता के पश्चात राज्य की दलीय प्रणाली कांग्रेस नेतृत्व वाली एक दलीय प्रभुत्व वाली प्रणाली रही तथा कांग्रेस को समाज के सभी वर्गो और सदस्यों का पूरा सर्मथन मिला।

1952 के प्रथम विधानसभा चुनाव में राज्य में कांग्रेस के अलावा अन्य दलों ने भी भाग लिया। इसमें भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी, भारतीय जनसंघ तथा राम राज्य परिषद प्रमुख थे। राम राज्य परिषद राजस्थान का प्रथम विपक्षी दल था जिसकी स्थापना 1947 में जयपुर और जोधपुर की कुछ प्रमुख जागीरदारों द्वारा दांता के ठाकुर मदन सिंह के नेतृत्व में की गई थी। इस दल को एक हिन्दू धर्माचार्य स्वामी किरपाटरी का आर्शीवाद प्राप्त था। राम राज्य परिषद् का प्रमुख उद्देश्य जागीरदारों और राजाओं के नेतृत्व में कांग्रेस विरोधी, सामन्तवादी और अनुदार तत्वों को संगठित करना था। राम राज्य परिषद् 'राम राज्य' के आदर्श की प्राप्ति करना चाहती थी जिसमें धर्म का तत्व प्रमुख था।[10]

राम राज्य परिषद के अलावा भारतीय जनसंघ भी प्रथम आम चुनाव में भाग लेने वाला प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दल था। अक्टूबर 1951 में स्थापित भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष डॉ. श्याम प्रसाद मुखर्जी थे। जनसंघ की स्थापना

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ से प्रेरित थी। भारतीय जनसंघ अपनी स्थापना से और नीजि उद्योगो की पक्षधर थी परन्तु इसने बाद में काफी रैडिकल आर्थिक कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। प्रथम आम चुनाव में राम राज्य परिषद को 160 सदस्य विधानसभा में 24 स्थान और 12.2 प्रतिशत मत मिले जबकि जनसंघ को 8 स्थान तथा 5.9 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। कांग्रेस को 82 स्थान तथा 39.5 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

द्वितीय विधानसभा चुनाव में 196 सदस्य में से कांग्रेस को 119 स्थान तथा 45.12 प्रतिशत मत प्राप्त हुए जबकि जनसंघ को 6 स्थान तथा 5.55 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। राम राज्य परिषद को 17 स्थान तथा 9.89 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। आगे चलकर जनसंघ और राम राज्य परिषद का एक राजनीतिक दल के रूप में अस्तित्व कमजोर होने लगा। इसकी जगह एक दक्षिणपंथी परन्तु धर्म निरपेक्ष अखिल भारतीय दल स्वतन्त्र पार्टी का उदय हुआ। राजस्थान की राजनीति में स्वतन्त्र पार्टी का उदय सबसे महत्त्वपूर्ण घटना हैं स्वतन्त्र पार्टी एक ऐसा दल था जिसमें भूतपूर्व देशी रियासतों के राजा महाराजा सम्मिलित हुए थे। स्वतन्त्रता के पश्चात यह पहला अवसर था जिसमें अधिकांश भूतपूर्व राजा किसी राजनीतिक दल के अन्तर्गत संगठित हुए और उन्होने कांग्रेस के समक्ष कड़ी चुनौती प्रस्तुत की। स्वतन्त्र पार्टी अगस्त 1959 में अस्तित्व में आयी तथा इसके अध्यक्ष सी.राजगोपालचारी थे। मीनू मसानी, एन.सी.रगा, के.एम. मुंशी इत्यादि स्वतन्त्र पार्टी से जुड़े थे।

मूलतः 19 वी शताब्दी की निर्बाध व्यापार या रात्रि पहेरदार राज्य जैसी अवधारणा के समर्थन के आधार पर स्वतन्त्र पार्टी ने स्वतन्त्र और निजि व्यापार को प्रोत्साहन देने तथा आर्थिक विकास में राज्य की सक्रिय भूमिका के विरोध का स्वर उठाया। यह केन्द्रीय नियोजन, सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका तथा राज्य द्वारा अर्थव्यवस्था के नियन्त्रण को बहुत छोटी सीमा में रखने के पक्षधर थे। इसने नीजि उद्यमों के राष्ट्रीयकरण और भूमि सुधार के लिए भूमि हदबंदी एवं अधिक भूमि सीमा निर्धारण जैसे उपायों का भारी विरोध किया।[11] जयुपर की महारानी गायत्री देवी 1961 में स्वतन्त्र पार्टी में शामिल हुई और शीघ्र ही स्वतन्त्र पार्टी की राष्ट्रीय उपाध्यक्ष बन गई। राजस्थान में स्वतन्त्र पार्टी में वे सभी सामन्तवादी शक्तियां सम्मिलित थी जो स्वतन्त्रता के पश्चात हुए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों से बुरी तरह प्रभावित थी। 1962 के विधानसभा चुनाव में स्वतन्त्र पार्टी ने 93 स्थानों पर चुनाव लड़ा और 36 स्थानों पर विजय प्राप्त हुई। स्वतन्त्र पार्टी में मतों का प्रतिशत 17.1 रहा जबकि कांग्रेस ने 175 स्थानों पर चुनाव लड़ा उसे 88 स्थानों पर विजय मिली तथा उसका मत प्रतिशत 40 रहा। भारतीय जनसंघ को 15 व राम राज्य परिषद को 3 स्थानों पर विजय मिली। चतुर्थ विधानसभा चुनाव (1967) में स्वतन्त्र पार्टी को 49 स्थान तथा 22.46 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। जबकि जनसंघ को 22 स्थान व 11.70 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

कांग्रेस को 145 स्थान तथा 51.14 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। पंचम विधानसभा (1972) में स्वतन्त्र पार्टी को 11 स्थान तथा 12.20 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

26 जून 1975 को इन्दिरा गांधी ने पूरे देश में आन्तरिक आपातकाल की घोषणा की। राजस्थान में भी आपातकाल की घोषणा का व्यापक असर पड़ा। यद्यपि राजनीतिक गिरफ्तारियां देश के अन्य भागों की तुलना में काफी कम रही। कठोर सरकारी नीतियों, दमन और नागरिक स्वतन्त्रता के हनन ने शासन को अलोकप्रिय बना दिया। जनवरी 1977 में जेल से बाहर आने के तुरन्त बाद विभिन्न विपक्षी दलों के नेताओं ने यथा कांग्रेस (ओ), जनसंघ, भारतीय लोकदल तथा सोशलिज्म पार्टी ने एक नई जनता पार्टी के विलय की घोषणा की।[12] इसमें आगे चलकर कांग्रेस फोर डेमाक्रेसी, डी.एम.के, अकाली दल तथा सीपीएम भी शामिल हुई। इसने कांग्रेस का राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर प्रतिरोध प्रस्तुत किया।

1977 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस को करारी हार का सामना करना पड़ा। कांग्रेस को केवल 41 स्थानों पर विजय और 31.41 प्रतिशत प्राप्त किए जबकि जनता पार्टी को 150 स्थान तथा 50.41 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। इस

तरह राजस्थान में भैरोसिंह शेखावत के नेतृत्व में पहली गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ। केन्द्र में जनता सरकार के पतन के बाद नए लोकसभा चुनाव हुए।

कांग्रेस के खिलाफ साझा विपक्ष का प्रयोग सफल नहीं रहा। केन्द्र में जनता पार्टी के सरकार के पतन के पश्चात नए लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को बहुमत मिला और उसने राजस्थान सहित कई राज्यों की विधानसभाओं को भंग कर दिया। विधानसभा भंग हो जाने के बाद प्रथम बार राज्य विधानसभा का मध्यावधि चुनाव हुआ। इस चुनाव में जनता पार्टी का भारतीय जनसंघ घटक भारतीय जनता पार्टी के रूप में सोशलिस्ट घटक जनता पार्टी (जेपी) लोकदल घटक जनता पार्टी (चरण सिंह) तथा राजनारायण समर्थक जनता पार्टी (एम राजनारायण) के रूप में विघटित होकर मैदान में उतरे और पराजित हुए। कांग्रेस को इस चुनाव में 133 स्थान तथा 42.96 प्रतिशत मत प्राप्त हुए।

जनता पार्टी के प्रयोग के असफल होने तथा दोहरी सदस्यता के विवाद के कारण 6 अप्रेल 1980 में जनता पार्टी के सदस्यों का एक नए दल भारतीय जनता पार्टी की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। 6 मई 1980 को जारी किये गये अपने आधारभूत नीति वक्तव्य में पार्टी को 5 निष्ठाओं से प्रतिबद्ध किया। ये निष्ठाऐं थी राष्ट्रीय समन्वय, लोकतन्त्र, प्रभावकारी धर्म निरपेक्षता, गांधीवादी समाजवाद और सिद्धांन्तों पर आधारित साफ सुथरी राजनीति।[13]

1985 के आठवीं विधानसभा चुनाव में भाजपा को 38 स्थान तथा 21.16 प्रतिशत मत प्राप्त हुए जबकि कांग्रेस को 113 स्थान 46.79 प्रतिशत मत प्राप्त हुए। शीघ्र ही भारतीय जनता पार्टी ने राजस्थान की चुनावी राजनीति ने प्रमुख विपक्ष की जगह ले ली। आगे चुनावों में भारतीय जनता पार्टी की स्थानों की संख्या और मत प्रतिशत दोनों ने उल्लेखनीय वृद्धि हुई तथा इस तरह राजस्थान की राजनीति कांग्रेस नेतृत्व वाली एकदलीय प्रभुत्व वाली राजनीति से द्विदलीय पद्वति हो गई। राजस्थान देश के उन चुनिदा राज्यों में से हैं जहां प्रतिस्पर्धी द्विदलीय व्यवस्था विद्यमान हैं और यह द्विदलीय प्रतिस्पर्द्धा दो प्रमुख राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के बीच में हैं साथ ही राजस्थान में तमिलनाडु, पंजाब, आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों के सदृश्य क्षेत्रीय दल का विकास नहीं हो पाया हैं।

1989 में जनता दल के उदय से राजस्थान में तीसरी शक्ति के उदय की सम्भावना बनी थी लेकिन राज्य में जनता दल के विभाजन तथा राष्ट्रीय स्तर पर जनता दल के बिखराव के कारण यह सम्भावना शीघ्र समाप्त हो गई। व्यापक सामाजिक और आर्थिक विषमताओं, कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था के बावजूद राजस्थान की राजनीति में वामपंथी दलों को विशेष महत्त्व नहीं मिल पाया हैं। विश्लेषक इसका कारण राजस्थान में सुदृढ़ सामन्तवादी परिवेश तथा औद्योगिकीकरण के अभाव को मानते है। साथ ही राजस्थान में उत्तर प्रदेश और बिहार की तरह दलित व पिछड़े वर्ग की जातियों में राजनीतिक संगठनों का विकास नहीं हो पाया हैं। इसलिए यह अनुभव किया जाता हैं कि राजस्थान में द्विदलीय व्यवस्था और अधिक स्थायित्व प्राप्त होगी।

भारत के अन्य राज्यों की तरह राजस्थान की राजनीति में जागृति एक प्रमुख तत्व रहा हैं। सामान्तवादी पृष्ठभूमि, औद्योगिकीकरण का अभाव, कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के कारण राज्य में राजनीति में जाति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं। राजस्थान की राजनीति को सामान्यतः जाट, राजपूत संघर्ष की राजनीति के रूप में माना जाता हैं। यद्यपि इसे वर्गीय रूप देने का भी प्रयास किया गया हैं। 20वीं शताब्दी में हुए किसान आन्दोलनों में जाट, राजपूत संघर्ष का संस्थायीकरण और विचारधारात्मक रूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी हैं। राजस्थान में स्वतन्त्रता से पूर्व 65 प्रतिशत क्षेत्र जागीरदारी व्यवस्था के अर्न्तगत आता था। जागीरदार मूलतः राजपूत थे जबकि किसान जाट जाति से सम्बन्धित । जातिगत निष्ठा ने दलीय निष्ठा को समाप्त करने में और दलबदल व गुटबाजी की भावना को प्रोत्साहित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, शिक्षा और राजनीतिक चेतना के प्रकार के कारण नए सामाजिक समूहों को भी राजनीति में भाग लेने का अवसर मिल रहा हैं जिससे

जातिगत राजनीति ज्यादा से ज्यादा बहुलवादी और प्रतिस्पर्द्धी होती जा रही हैं।

***सहायक प्रोफेसर**
राजनीति विज्ञान
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय,
अजमेर (राज.)

सन्दर्भ

1. वीनर, मायनर 'स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया' (सम्पादित) प्रिंसटन यूर्निवसिटी प्रेस, न्यूजर्सी 1968 पृष्ठ 16
2. नारायण, इकबाल स्टेट पॉलिटिक्स इन इण्डिया (सम्पादित), मीनाक्षी प्रकाशन, 1967 मेरठ, पृष्ठ XVII
3. वीनर, मायनर वहीं, पृष्ठ 7
4. रजनी कोठारी 'पॉलिटिक्स इन इण्डिया', ओरियन्टल लागमैन, 1970 नई दिल्ली पृष्ठ 89
5. कमल, के. एल., पार्टी पॉलिटिक्स इन एन इण्डियन स्टेटः ए स्टडी ऑफ द मेन पॉलिटिक्ल पाटीजइन राजस्थानः एस चांद एण्ड कम्पनी, जयपुर, 1970 पृष्ठ 6
6. फाक्स रिचर्ड जी रेसिलेंस एण्ड चेज इन इण्डियन कास्ट सिस्टम द उमर ऑफ यूपी, जर्नल ऑफ एशियन स्टडीज 26 (अगस्त 1967) पृष्ठ 575–87
7. सिसन रिचर्ड, द कांग्रेस पार्टी इन राजस्थान पॉलिटिक्ल इन्टीग्रेशन एण्ड इस्टीट्रयूशन बिल्डिग इन एन इण्डियन स्टेट 'यूर्निवसिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1972, पृष्ठ 32
8. कमल, के.एल. वही पृष्ठ 7
9. कमल, के.एल. वही पृष्ठ 38
10. कमल, के.एल. वही पृष्ठ 77
11. चन्द्र विपिन, मुखर्जी मृदुला, मुखर्जी आदित्य, आजादी के बाद का भारत (1947–2001) हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1999 पृष्ठ 246
12. चन्द्र विपिन, मुखर्जी मृदुला, मुखर्जी, आदित्य वही पृष्ठ 348
13. जैन पुखराज, फड़िया बी.एल. भारतीय शासन एवं राजनीति (राज्यों की राजनीति सहित) साहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा, 2005 पृष्ठ 451